आजादी : एक पत्र

भुवनेश्वर

हिन्दी ADDA

आजादी : एक पत्र

वही मार्च का महीना फिर आ गया। आज शायद वही तारीख भी हो। पर मेरे लिखने का सबब इतना निकम्मा नहीं है। असल में प्यारे दोस्त, इस एक साल में मेरे साथ कुछ ऐसा 'घट' गया है कि अब जब कई बार टाल चुकने के बाद मैं तुम्हें लिख रही हूँ, ऐसा हौसला होता है कि मुझे इससे कहीं पहले लिखना चाहिए था। बहरहाल, तुमने

इस साल भर चुप रहकर उस समझदारी का सबूत दिया है जो हमीं लोग, हम जो इतने सबसे गुजर चुके हैं, समझ सकते हैं।

वह स्टूडेंट जिसने उस शाम को इसाडोरा डंकन के फैशन में बहुत सी खट्टी-मिट्ठी बातें की थीं, पिछले सितम्बर में अचानक मर गई। हॉस्टल छोड़ने के कुछ दिन पहले उसने अपनी खिड़की में नागफनी का एक गमला लाकर रखा था और राम जाने मजाक या किसी गहरे दयनीय विकार में ठीक हमारे पुरखों की तरह उसे पूजना शुरू कर दिया था। फिर एक दिन वह अचानक खफीफ-सी बीमार होकर घर चली गई और करीब एक महीने बाद सुबह हम लोगों ने देखा कि हाउस मेड के पीछे एक काउब्वाय फिल्मों के मनमौजियों की तरह का आदमी उसके कमरे में से निकल रहा है।

वह उसका बाप था जो उसकी चीज वस्तु लेने आया था। सो हमारी नन्हीं इसाडोरा डंकन की मौत इस तरह हुई और मेरा ख्याल है कि इस मौत के सिवा कोई भी उसके मौजूँ न थी। क्या तुम महसूस नहीं करते कि अक्सर हम न अपनी जिन्दगी जीते हैं और न अपनी मौत मरते हैं। अस्पताल के खैराती कपड़ों की-सी जिन्दगी न हम पर फबती है, न फिट ही होती है और हालाँकि वह साफ और धुली होती है; क्लोरोफार्म की बदबू की तरह मौत उसमें बसी रहती है। मैं बाज मर्तबा महसूस करती हूँ कि हमारी सबसे बड़ी ट्रेजेडी यह नहीं है कि हम अपनी जिन्दगी नहीं जीते; बल्कि हम अपनी मौत नहीं मरते। क्योंकि यह सिर्फ मौत है जो जिन्दगी के ओछेपन को असम्बद्ध और बेकार घटनाओं के ढेर को एक मानी देती है। मैं जानता हूँ, आप जरूर इसे ‘अंदोलस्ते सोफिस्त्री’ कहेंगे। मुझे याद है, तुमने जो कहा था कि मैटर में न कुछ पैदा होता है और न कुछ मरता है। आदमी ने खुद पैमाइश और मौत बनाई है कि वह इस कवित्व से अपने-आप को बरतरी दे।

हाँ भुवन, मैं इस बहस को तातील देकर तुम्हें वह घटना बता दूँ, क्योंकि अगर मैं इस वक्त नहीं कहूँगी तो फिर पूरे खत में नहीं कह पाऊँगी। मैं, एक दो महीने के बच्चे की माँ हूँ।

वह कुछ इतना सहज और अचानक हुआ कि पहले तो मैं खुद अपने ही से उसे कबूल न कर सकी। निहायत मासूमी से मैं रातोरात जगकर सोचा करती थी। टर्म का आखिर हो रहा था और हॉस्पिटल-ड्यूटी से भी एक महीने की छुट्टी हो रही थी। हाँ, मैं बराबर इस नए ‘फेनामना’ के बारे में सोचती रहती थी और शुरू में ही मैंने डरने से एकटूक इन्कार कर दिया। मैं जब घर जा रही थी, तब डर शुरू हुआ - एक अनहोना धुँधला खौफ जो दिल में दर्द नहीं, झुँझलाहट और ऊब पैदा करता था। पूरे ट्रेन के सफर में

अजीब-अजीब पेंच खाती रही। मैं चाहती थी, पर जान न सकी कि दूसरे लोग मुझे कैसे देखते हैं। सफर की रात बड़ी तकलीफदेह थी। मैंने ध्यान बँटाने के लिए लोगों से बातचीत शुरू की, पर वह सभी सवालों का अनमने जवाब देकर कतरा जाते थे। मुझे ऐसा क्या हो गया था! मुझ पर अजीब गुजर रही थी।

यकीन करो, बाज मर्तबा तो मन ऐसा करता था कि मैं एकबारगी विलाप कर रोने लगूँ या एकबारगी चिल्ला पड़ूँ - 'ऐ भूचाल की सन्तानो।' अब आखिरकार नींद आ गयी तो सपनों में मैं उस नागफनी के धूल से भरे सूखे बूटे को देखती रही। सुबह काठगोदाम में मन फिर स्वस्थ हो गया। रात भर के सफर के बाद काठगोदाम की गीली-गीली हवा और नीले-बिलकुल नीले - पहाड़ों की परतों पर परतों में जो जादू है, वह तुम जानते हो। अल्मोड़े तक लॉरी का सफर मैंने बड़ी अच्छी तरह किया। मेरे अन्तर में कुछ उदय हो रहा था और मुझे यकीन था कि मैं माँ से सब कुछ कह लूँगी। अल्मोड़े की चुंगी के पास फिर मेरी हिम्मत बढ़ने लगी। मैंने देखा; नए पादरी की बीवी, मिसेज नबी मेरी तरफ छाता हिला-हिलाकर भोंडे तरीके से मुस्करा रही हैं। पहले तो मेरा हँसने का जी चाहा, लेकिन तुरन्त ही ख्याल हुआ कि जब उन्हें मालूम होगा तब भी वह इसी भोंड़ी और खिसियाई-सी मुस्कान से मेरी तरफ देखेंगी और कुछ बेमानी बुदबुदाकर छाता हिलाती तेज-तेज चल देंगी और तब... और तब...।

माँ मुझे देखते ही चौकन्नी हो गयी। उन्होंने मुश्किल से साधारण होने की कोशिश की; पर मेरे लिए वह बोझ बहुत था। मैंने मुँह फोड़कर कहा - 'मामा, अब तो मैं साल भर बाद ही नौकरी कर सकूँगी।' मामा ने पल भर को मेरी तरफ दर्द से देखा और फिर धीरे-धीरे भीतर के कमरे में चली गयीं। परदे के पीछे से उन्होंने कहा - ''जो तुम्हारा जी चाहे करो; लेकिन प्रभू और सलीब की कसम मेरे सामने न पड़ना।'

मुझे एकबारगी याद आया कि एक मौके पर इसी आवाज और लहजे में यही बात उन्होंने कही थी और मेरा मन दहल गया। पीले सिकुड़े परदे की धारियाँ तरल आग की तरह लौटने लगीं।

बचपन में मेरे सबसे बड़े भाई टिम ने एक रोज एक कुतिया पाल ली थी। उसके पीछे के दोनों पैर घायल थे और वह घिसट-घिसट कर चलती थी, शायद इसीलिए कोई भोटिया उसे छोड़ गया था। टिम ने उसे देखते ही पाल लिया और कंजड़ नाम रख दिया। ममा इस नाम पर बहुत हँसी पर कंजड़ को घर में रखने से उन्होंने साफ इन्कार कर दिया। मैंने और टिम ने फौरन रावत साहब के बँगले की मुँडेर के नीचे टाट का मकान बना दिया था। एक रोज टिम ने हाँफते हुए आकर खबर दी की कंजड़ के एक,

दो, तीन, चार बच्चे हुए हैं और ममा ने इसी तरह परदे के पीछे खड़े होकर कहा था - ’जो तुम्हारा जी चाहे करो, लेकिन प्रभू और सलीब के लिए मेरे सामने मत पड़ना।’

मैंने और टिम ने उन छोटे-छोटे चूहों के-से बच्चों को टाट में लपेटा और नारायण तिवारी के एक पोखरे में डुबा दिया। पहले वह बार-बार उभर आता था और टिम को उसे एक छड़ी से डुबोना पड़ा। उस दिन टिम अपने हाथों को दाँत से काटता घर भर में दौड़ा किया...

मैं अब न रुक सकती थी! मेरी अपनी माँ मेरे खिलाफ हो गयी थी।

हॉस्टल छुट्टियों में खाली हो चुका था, सिर्फ दो-एक फाइनल की लड़कियाँ थीं। मैं सामान रखवाकर अस्पताल आई और वहाँ मैंने सब कुछ सरूपी से कह दिया। पहले सरूपी को यकीन नहीं हुआ, जब हुआ तो वह ‘ग्लैडिस का बच्चा’ या ऐसा ही कुछ चिल्लाती हुई ऊपर भागी और एक नए हाउस सर्जन को खींचती हुई ले आई - खुशी और एक्साइटमेंट से वह दीवानी हो रही थी। हाउस सर्जन हक्का-बक्का होकर देख रहा था, कहा - ’बच्चा? कैसा बच्चा?’ और सरूपी ने उसे हँसते हुए कमरे से ठेल दिया।

लेकिन वह आदमी कौन है?

यह ठीक है कि हम उसको किसी तरह सजा नहीं देना चाहेंगे। सजा का पूरा बोझ तुम्हीं (यानी स्त्री) को उठाना पड़ेगा। ज्यादा-से-ज्यादा हम यह कह सकते हैं कि हम तुमको सिर्फ इतनी ही सजा दें कि हम तुम्हें उस धोखेबाज बेउसूले मर्द के हवाले जिन्दगी भर के लिए कर दें। इसलिए औरत को अपने बरगलाने वाले का नाम बता देना फर्ज ही नहीं, एक बड़ा नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व है। लेकिन मैं इज्जतदार बेरोजगार हूँ, खासी इकोनॉमिक यूनिट हूँ, इसलिए मैं कैदी के कठघरे में खड़े होने के बजाय खुद जजों की बेंच पर बैठी हूँ। छोटा-सा कस्बा है, यहाँ हर आदमी यही समझता है कि इन डॉक्टरनी साहिबा ने किसी लावारिस लड़के को पाल लिया है। लेकिन इससे भी ज्यादा कुछ है।

पिछली सर्दियों से जब वक्त करीब ही था, मैं हॉस्पिटल में ही कुछ नाइट ड्यूटी करती थी। एक दिन सुबह, जब मैं एक वार्ड से दूसरे वार्ड में जा रही थी, मैंने उसे दूर से पहचान लिया। मैंने फौरन पहचाना उसकी गंभीर और कुछ-कुछ मगरूर चाल और मत्थे के ऊपर घोंसले की तरह रक्खे हुए बालों से। ऐसी शायरों की धजा डॉक्टरों में बेहद गैर मामूली चीज है। उसने भी मुझे देख लिया और मेरे बराबर से गुजरा तो ठिठक गया। उसने कहा कि उसे लड़ाई पर कमीशन मिल रहा है; लेकिन वह खुद

अपना क्लीनिक खोलना चाहता है। और कुछ ऐसी ही इधर-उधर की बातें करके वह चल दिया।

दूसरी मर्तबा नैनीताल में वह एक दिन शाम को सरूपी के साथ आ गया। बच्चा वहीं एक किबी में था और मैं सरूपी के साथ ठहरी थी। मेरी नौकरी का ठीक नहीं हुआ था, पर मेरा मन और शरीर काफी स्वस्थ था। उसे देखकर मैं एकबारगी हँस पड़ी। जाहिर है कि उसने बच्चे के बारे में सुन लिया था, फिर भी वह अनजान बना हुआ था और मैंने या सरूपी ने बच्चे की कोई बात नहीं की। उसने अपनी जिन्दगी की कठिनाइयों और मायूसियों का पहली बार मुझसे जिक्र किया और कहा कि शायद मजबूर होकर उसे फौज में ही जाना पड़ेगा। फिर यह उसका सामने खत पड़ा है जिसमें उसने लिखा है कि वह आठ तारीख को यानी आज बम्बई से सेल कर रहा है, शायद यह न जानते हुए कि उसकी औलाद ने एक औरत का दिल और जिन्दगी भरी-पूरी कर दी है। मैंने पहले ही दिन से तय कर लिया था कि मैं उसे न बताऊँगी, मैं उसे मजबूर नहीं करना चाहती हूँ और नहीं बरदाश्त कर सकती कि उसका-सा बेचारा और दयनीय पुरुष मुझ पर दया करे। अगर सच पूछो तो बच्चा उसके लिए क्या है और मेरे लिए वह ऐसा सत्य है जिसे मैंने शरीर और आत्मा की पीड़ा के जरिए महसूस किया है। इसने मेरे अन्दर अनहोनी ताकत, उमंग और आजादी की ललक पैदा कर दी है।

क्या चीज है आजादी? बिना उसे हासिल किए और बरते बिना उसके बारे में कुछ भी नहीं जानते।

(चाँद (मासिक), इलाहाबाद, वर्ष 19, खंड-1, संख्या-2 जुलाई, 1941)

https://www.hindiadda.com/aajadi-ek-patr/